पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की गीति कला

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉंधी राजकीय महिलामहाविधालय,
रायबरेली, उ.प्र

गुनगुनाना और फिर सहसा किसी अन्तः प्रेरणा के दबाव और बढ़ाव में गा उठना मानव का सहजात, आदिम स्वभाव है। इसी सहजात प्रवृत्ति ने लोक–क्षेत्रों में लोक–गीत और काव्य के क्षेत्र में गीति–काव्य को जन्म दिया है। सुख–दुःख, हर्ष–विवाद के प्रभाव व्यक्ति को अनेकशः अन्तर्लीन लोक इन क्षणों में ही गीत एवं गीति–काव्य का उद्भव या जन्म हुआ करता है। इसी कारण सर्वत्र यह प्रवृत्ति समान भाव से पाई जाती है। गीत या गीति बोली और भाषा दोनों का सहज श्रृंगार है।

गीति हिन्दी–साहित्य का ही नहीं, विश्व साहित्य का प्रियतम काव्यरूप है, इसलिए इसकी परम्परा किसी न किसी रूप में आदिकाल से ही चली आ रही है। संस्कृत में भी यह परम्परा काफी पुरानी है। वेदों में गीतों के बीज मिलते हैं, अतः कतिपय आलोचक हिन्दी–गीति परम्परा को वेदों में गीति परम्परा से जोड़ते हैं। भारतीयता के प्रति उनका यह अपार मोह श्लाघनीय तो अवश्य है, किन्तु आधुनिक हिन्दी–गीति परम्परा पर इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यह तो अंग्रेजी साहित्य की 'लिरिकल पोयट्री' का ही अनुकरण है। इस मत को मानने में हमें तनिक भी हिचक नहीं होनी चाहिए। डॉ0 नगेन्द्र की यही मान्यता है –

"यो तो गीति–काव्य हिन्दी से ही चला जाता है, विद्यापति, सूर, मीरा और घनानन्द के भाव प्रवण पद संसार के गीति–साहित्य में अमर रहेंगे, क्योंकि वे उनके हृदय के उन्मुक्त एवं उन्मुक्त गान हैं, परन्तु जिस गीति–शैली का विकास द्विवेदी युग के पश्चात् हुआ, वह पाश्चात्य लिरिक के ढंग का था।" इतना स्वीकारते हुए भी इसके मूल बीज को हम एक परम्परा और परम्परागत हार्दिकता की देन ही स्वीकार करना होगी। ऐसा स्वीकारना ही स्वाभाविक है।

गीति की परिभाषा एक तत्व

पाश्चात्य साहित्य में हीगेल, अर्नेस्ट रिस, जॉन ड्रिंक वाटर, गमर और हडसन आदि विद्वान प्रमुख हैं, जिन्होंने नीति–काव्य की परिभाषा करने का प्रयत्न किया है। इनके मत इस प्रकार हैं –

1. 'गीति–कव्य में किसी ऐसे व्यापक कार्य का चित्रण हीं होता, जिससे बाह्य संसार के विभिन्न रूपों एवं ऐश्वर्य का उद्घाटन हो। उसमें तो कवि की निजी आत्मा के ही किसी एक रूप–विशेष का निदर्शन होता है। उनका एकमात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली में आन्तरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, उसकी आशाओं, उसके आह्लाद की तरंगों और उनकी वेदना की चीत्कारों का उद्घाटन करना ही है।" – हीगल
2. "गीति–काव्य एक ऐसी संगीतमय अभिव्यक्ति है, जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण आधिपत्य होता है, किन्तु जिसकी

प्रभावशालिनी लय में सर्वत्र उन्मुक्तता रहती है।" – अर्नेस्ट रिस

3. "गीति–काव्य एक ऐसी अभिव्यंजना है जो विशुद्ध काव्यात्मक (भाषात्मक) प्रेरणा से व्यक्त होती है तथा जिसमें किसी अन्य प्रेरणा के सहयोग की अपेक्षा नहीं रहती।" – जॉन ड्रिंकवाटर

4. " गीति–काव्य वह अन्तर्वृत्ति निरूपिणी कविता है, जो वैयक्तिक अनुभूतियों से पोषित होती है, तथा जिसका सम्बन्ध घटनाओं से नहीं अपितु भावनाओं से होती है और जो किसी समाज को परिस्कृत अवस्था में निर्मित होती है।" यहाँ अन्य बातों में सहमत होते हुए भी परिस्कृत अवस्था वाली बात से हम सहमत नहीं हैं। हमारे विचार में गीति के लिए उतनी परिस्कृत व्यवस्था की आवश्यकता नहीं रहती जितनी हार्दिकता की ओर हार्दिकता मानव का एक सहजात तत्व है। – गमर

5. "वैयक्तिकता की छाप गीति–काव्य की सबसे बड़ी कसौटी है, किन्तु वह व्यक्ति–वैचित्र्य में सीमित न रहकर व्यापक मानवीय भावनाओं पर आधारित होती है, जिससे प्रत्येक नाटक उससे अभिव्यक्त भावनाओं एवं अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर सके।" – हडसन

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने से गीति–काव्य के निम्नलिखित तीन तत्व उपलब्ध होते हैं –

1. वैयक्तिकता या आत्मानिव्यक्ति
2. संगीतत्मकता
3. भावप्रवणता

हिन्दी आलोचकों को भी ये तत्व मान्य हैं, यद्यपि गीति तत्वों को संख्या में मतैक्य नहीं है, अतः इन्हीं के आधार पर निराला की गीति–कला का विश्लेषण करना उपयुक्त होगा।

गीति–काव्य में वैयक्तिकता अथवा आत्माभिव्यक्ति दो विधियों से की जाती है – प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष या विरोध विधि से। प्रत्यक्ष विधि में कवि प्रथम पुरुष ने अपने सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, आशा–निराशा का वर्णन करता है। हिन्दी में भक्त और सन्त कवियों से लेकर अब अद्यतन अनेक कवियों ने इसी विधा को अपनाया है। डा0 बच्चन को इस विधि के प्रतिनिधि गीतिकार मान सकते हैं। पर महादेवी वर्मा का महत्व बच्चन से भी अधिक है, इसमें कोई संदेह नहीं। अप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष विधि में गीतिकार कल्पना के आवरण में या प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करता है। विद्यापति, सूर, तुलसी आदि प्राचीन कवियों में यह विधा अधिक प्रचलित मिलती है। कुछ आलोचकों का मन्तव्य है कि प्रत्यक्ष विधि में कलात्मकता का अभाव होने के कारण प्रभावशीलता को ठेस लगती है, किन्तु यह मन्तव्य उचित नहीं जान पड़ता। हमें तो प्रत्यक्ष विधि ही अधिक प्रभावशालिनी प्रतीत होती है क्योंकि इसमें कवि और पाठक अथवा श्रोता का सीधा सम्बन्ध स्थापित रहता है, उसके मध्य कल्पना और प्रतीकों की प्राचीर नहीं होती।

निराला के गीतों में दोनों प्रकार की विधियां मिलती हैं। यदि वे 'सरोज–स्मृति' जैसे गीतों में अथवा गहन विवाद प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करते हैं, 'हिन्दी सुमनों के प्रति पत्र' में अपने उपेक्षित जीवन की कथा कहते हैं, तो बन बेला', 'स्वप्न–स्मृति', आदि गीतों में अपनी कसक को परोक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि निराला का निर्भीक व्यक्तित्व प्रत्यक्ष विधि को भी अपनाने से कभी नहीं हिचकिचाया, तथापि अपेक्षाकृत परोक्ष विधि का ही अधिक आलम्बन इन्होंने किया है। दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियों में हार्दिकर्ता का अभाव नहीं, वह पूर्णतया संचलित है।

संगीत गीति का अनिवार्य तत्व माना जावे अथवा नहीं? इस प्रश्न का उत्तर निर्विवाद नहीं है। पाश्यचात्य विद्वान अल्फ्रेड आस्टिन इसकी अनिवार्यता इन शब्दों में स्वीकारते हैं –

No verse which is unmusical or obscure can nt be regarded as poetry, whatever qualities it may possess.

अर्थात् जिस पद्य में संगीत का सौन्दर्य नहीं है, उसमें चाहे अन्य कितने भी गुण हों, उसे काव्य का पद नहीं दिया जा सकता। इसके विपरीत की रामखेलावन पाण्डेय का मत है –

'संगीतमय अथवा संगीगात्मक होना गीति–काव्य की अन्यतम कसौटी नहीं।'

श्री पाण्डेय का यह मन्तव्य ग्राह्य नहीं है। नीति काव्य में संगीत का होना अनिवार्य है, भले ही किसी प्रकार का संगीत हो – चाहे वर्णो का हो, चाहे स्वरों का और चाहे नाद का।

निराला संगीत में विख्यात थे और इन्होंने संगीत का पर्याप्त अभ्यास भी किया था। स्मात् इसी कारण इन्होंने संगीत को ही गीति का सबसे अधिक आवश्यक तत्व मानकर अपने प्रत्येक गीति में संगीत की सृष्ठु ययोजना की है यथा–

अभी न होगा हो मेरा अन्त
अभी–अभी ही तो आया है,
मेरे वन में मृदृल बसन्त,
अभी न होगा मेरा अन्त।
तिमिरदारण मिहिर बरसो,
ज्योति के कर अन्ध कारा–
गार जग का सजग परसो।

भाव–प्रवणता या भावों का उच्छंलन गीतिकाव्य के नाम है। भावों के उद्दाम आवेग अभाव में गीतिका जन्म का ही सम्भव नहीं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि दुःख–सुख की उद्दाम आवेशमयी स्थिति में ही गीति का जन्म होता है। इसी मान्यता को प्रसिद्ध गीतिकार डॉ0 बच्चन ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

मैं रोया तुम कहते हो इसकी सादर,
मैं फूट पड़ा तुम कहते हो छन्द बनाना है।

पन्त की निम्नलिखित पंक्तियां भी इस मत का समर्थन करती है –

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आंखों से चुपचाप
वही होगी कवित अनजान।

भाव–प्रवणता के लिए हृदय की सहज स्वाभाविकता की आवश्यकता है। जहां हृदय निर्बन्ध होकर अपनी ही भाषा में बोलता है। यहाँ भाव–प्रवण स्वतः आ जाती है। यही कारण है कि साहित्यिक गीतों की अपेक्षा लोक गीतों में अधिक भाव प्रवणता होती है। इस दृष्टि से निराला के गीतों को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग में तो वे गीत आते हैं जो दार्शनिक है, जिनमें चिन्तन की प्रधानता है। दूसरे वर्ग में वे गीत आते हैं, जो कवि के हृदय के सहज स्फुरण है। इनमें भावना का प्राधान्य है। ये गीत अधिक भाव–प्रवण हैं अतः इनका महत्व भी अधिक है। यथा –

'जड़ नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहग–से
सो गया सुरा–स्वर
प्रिया के मौन अधरों में।
क्षुब्ध एक कम्पन सा निहित
सरोवर से।

इन पंक्तियों में चिन्तन की प्रधानता है। और –

'बांधो न नाव इस ठांव बन्धु!
पूछेगा सारा गांव बन्धु!
यह घाट वही जिस पर हंसकर
वह कभी नहाती थी धंसकर
आंखे रह जाती यों फंसकर
कंपते थे दोनों पांव बन्धु।'

इन पंक्तियों में हृदय की सरल सरसता का प्राधान्य है। अतः ये पंक्तियां उपर्युक्त पंक्तियों की अपेक्षा अधिक भाव–प्रवण है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तात्विक दृष्टि से निराला ही गीति–कला पूर्णतः खरी है। इन तीन तत्वों के अतिरिक्त संक्षिप्तता टेक पदों की योजना एवं उपयुक्त भाषा आदि गीति–काव्य के तीन अन्य तथ्व भी स्वीकारे जाते हैं। निराला ने इनकी भी रक्षा एवं पालना की है, ऐसा कहा जा सकता है।

निराला ने अनेक नियमों पर गीत लिखे हैं। अतः विषय के आधार पर इनके गीतों को निम्नलिखित वर्गो के अन्तर्गत रखा जा सकता है –

1. प्रार्थना–प्रधान गीत।
2. नारी–सौन्दर्य प्रधान गीत।
3. प्रकृति–प्रधान गीत।
4. राष्ट्रीयता–प्रधान गीत।

निराला आरम्भ से अन्त तक आस्थावादी एवं आस्तिक रहे हैं, इसीलिए इनके काव्य में प्रार्थनापरक गीतों की प्रधानता है। 'गीतिका' तो एक प्रकार से प्रार्थनापरक गीतों का ही संग्रह कहा जा सकता है। अपनी जीवन की समस्त निराला और अशेष अवसाद से खिन्न होकर जब कवि 'जननि' को अपनी व्यथा सुनाने लगता है तो पाठक भी द्रवित हो उठते हैं–

'सार्थक करो प्राण
जननि दुःख अवनि
दुरति से दो भाग।'

'अणिमा', 'अर्चना' और 'आराधना' में भी ऐसे गीत पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। इन नामों से भी वर्ण्य विषयों का एकमात्र बोध हो जाता है। प्रार्थनापरक गीतों में कवि ने अपने लिए तो प्रार्थनाएं की ही हैं, समूची दुःखों और पीड़ित मानवता तथा राष्ट्रोद्धार के लिए भी प्रार्थनाएं की है।

छायावादी कवियों ने जहां अनेक विषयों में विद्रोह का भाव व्यक्त किया, वहां नारी विषयक परम्परागत हीन एवं वैषम्यपूर्ण धारणाओं के विरुद्ध भी झंडा उठाया। रीतिकाल में नारी कार रूप केवल एक रंग–विरंगी पुतली का रह गया था, जो नर का केवल मनोरंजन करती थी, इसमें आगे उसकी कोई सत्ता न थी। छायावादी कवियों ने नारी को इस कठधरे से निकाला और उसके बाह्य तथा आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन किया। इस वर्ग के गीत के 'परिमल' और 'गीतिका' काव्य–संग्रहों में विशेष रूप से मिलते हैं। ऐसे गीतों में शेफालिका, जूही की कली और नर्गिस के स्वछन्न प्रेम के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले भाव अंकित किये गये हैं। निराला की केवल आभिजात्य वर्ग में ही सौन्दर्य दृष्टिगोचर नहीं होता, बल्कि उनके कृषक की वधू की आंखे भी खंजन की आंखों की तरह सुन्दर दिखायी देती है।"

'क्यों हरीतिमा में बैठे दो विहग बन्द कर पांखें।'

तात्पर्य यह है कि निराला ने वर्ग–विभेदों से ऊपर उठकर नारी के सहज अनतः–बाह्य सौन्दर्य का चित्रण करने के साथ उसके कर्म–सौन्दर्य का महत्वाकन भी किया है।

प्रकृति छायावादी कवियों की उत्प्रेरक एवं सहचरी रही है। अतः अन्य छायावादी कवियों की उत्प्रेरक एवं सहचरी रही है। अतः अन्य छायावादी

कवियों की भांति निराला ने भी प्रकृति–प्रधान गीत काफी संख्या में लिखे हैं। इन गीतों के दो प्रकार है – एक तो वह जिनमें केवल प्रकृति चित्रण किया गया है, और दूसरा वह जिनमें प्रकृति के रम्य व्यापारों द्वारा हृदय में उत्पन्न भावनाओं के विविध व्यापारों का चित्रण है। यथा –

'कांप उठी विधि के यौवन
प्रथम कम्प मिस मन्द पवन से,
सहसा निकल लाज चितवन से
भाव सुमंत छाये।

इन पंक्तियों में प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन है और –

'विजन–वन–वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी–
स्नेह–स्वप्न–मग्न–अमल–कोमल–तनु–तरुणी
जुही की कली
दृग बन्द किये, शिथिल पत्रांक में।'

इन पंक्तियों में लौकिक और आत्मपरक दोनों प्रकार के श्रृंगार की अभिव्यक्ति के साथ–साथ अलौकिक भावनाओं को व्यक्त किया गया है। निराला ने आलम्बन रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत ही कम किया है।

निराला के हृदय में देश–प्रेम का अजस्र स्रोत प्रवाहित था और इन्हें अपने प्रिय देश की दुर्दशा पर बहुत अधिक दुःख था। इसीलिए इन्होंने जागरण के अनेक गीत लिखे हैं। इस प्रकार के गीतों में भारतीय वन्दना, जागो फिर एक बार, जागो जीवन घनि के, छत्रपति शिवाजी का पत्र आदि गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमें सांस्कृतिक तत्वों एवं चेतनाओं का भी सहज उदाहरण हुआ।

शैली की दृष्टि से इनके गीतों को इन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है–

1. सम्बोधगीत
2. शोकगीत
3. पत्र गीति
4. नाट्य काव्य
5. आख्यानक गीति

यह शैली यद्यपि पाश्चात्य साहित्य की देन है, फिर भी हिन्दी के लिए एकदम नवीन वस्तु नहीं है, क्योंकि संस्कृत में प्रायः इन रूपों की योजना मिलती है। निराला की काव्य–प्रतिभा इन रूपों में भी बहुत सफलता के साथ रमी है।

अन्त में कहा जा सकता है कि गीतिकार की दृष्टि से निराला का स्थान महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. हिंदी गीत काव्यः परम्परा और निराला–मंजू तिवारी, पृ. 38
2. निराला का गीत काव्य–संध्या सिंह, पृ. 48
3. निराला–सं0 विश्वनाथप्रसाद तिवारी, पृ. 40
4. निराला की कविताएं और काव्य भाषा–रेखा खरे, पृ. 82
5. प्रसाद निराला अज्ञेय–रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 49
6. निराला–रामविलास शर्मा, पृ. 102
7. निराला की साहित्य साधनाः भाग 1, भाग 2, भाग 3, पृ. 49, 62, 132

Copyright © 2015 *Dr. R.P Verma*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.